THE TIMES OF INDIA

Date: 03-07-18

Same Old Mistakes

LIC buying a stake in IDBI Bank not a good idea, government should exit bank ownership

TOI Editorials

State-owned life insurer LIC is on its way to buying a majority stake in public sector IDBI Bank. Insurance regulator IRDA has stepped in line, waiving a regulatory ceiling of 15% investment in a company by a life insurer. IDBI is perhaps the worst affected of the banks struggling to deal with mounting bad loans. But LIC's decision to pick up majority stake by buying out government holdings is hardly the best way to deal with the situation.

LIC is a behemoth, the dominant life insurer with extensive financial investments. It holds a stake in over 20 banks and has board positions in some. By increasing its stake in IDBI, where total bad loans as a percentage of advances are 27.95% (compared to an average of 15.6% for public sector banks), it raises many questions. One, this leads to a concentration of risk in the system. Two, it is unclear how LIC is going to contribute to the betterment of IDBI Bank's governance which is a prerequisite for better performance. Three, this and similar investments could undermine bonuses for LIC's policyholders.

Even if LIC claims its decisions are taken independently, there is abiding suspicion that government's fiscal constraints influence it. This leads to the likelihood that LIC's decisions add to the crowding out effect, particularly when there are signs that private investment demand may have begun to revive. Therefore, LIC buying a majority stake has notable downsides, including undermining credibility of regulators on account of the need to provide exemptions. The current situation stems from conflicts of interest at play when government is an owner, law maker and also overseer of regulators. There needs to be a roadmap for government to exit banks.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 03-07-18

How to Put An End to Lynching Via WhatsApp

ET Editorials

At least 31 people have been killed over the last one year in 10 different states by lynch mobs mobilised by rumours of child lifting spread over WhatsApp. This is over and above the lynchings in the name of the cow. Tourists, beggars, migrants, men, women, civil servants — anyone can be mistaken for a child lifter by a mob primed for a killing and looking around for a victim.

It is time to take concerted action against those who spread killer rumours, by the Centre and the states working together. Preventive policing is key. It takes some time for a rumour to gain enough traction for a mob to assemble and work itself into a frenzy. A police force that is trusted by the community it serves would get to know about such rumours within that time interval.

Clearly, such trust or extensive presence of the police is missing. Punitive action against WhatsApp groups that spread rumours should have a deterrent effect. Facebook, of which WhatsApp is a part, should share with the government at the Centre and with every state government a periodically updated list of all WhatsApp group administrators.

It is neither necessary nor desirable for every police station to know all the WhatsApp messages being shared in its administrative territory. But the Station House Officer (SHO) should have a current list of all WhatsApp admins in his area.

If false rumours spread in the locality, the SHO should know whom to ask. Every group admin should be made aware that she is accountable for rumours spread on her group, just as a newspaper editor is accountable for libel or hate speech in her journal.The government must enforce zero tolerance for vigilante violence. Politically motivated tolerance of violence in the name of the cow promotes lynching on other pretexts as well.

Date: 03-07-18

Farm Prosperity - Not by Inflated MSP

ET Editorials

Prime Minister Narendra Modi has assured farmers that the Cabinet would decide this week on fixing the minimum support price (MSP) for kharif crops at 150% of the production cost. The intent to tackle farm distress is laudable, but hefty hikes in MSPs could be counterproductive. It could push domestic prices out of sync with global prices and destroy market discipline in crop choice, cost control and efficiency.

If the MSP scheme takes the form of actual procurement, state outlay would have to cover, over and above the cost of procurement, the cost of storage, transport, spoilage and pilferage, besides significant costs such as market taxes and loading and unloading charges. Madhya Pradesh tried an alternative to state procurement: paying the farmer the difference between the market

price and the MSP, but traders took advantage by artificially depressing prices so that the state would pick up the tab.

Policy should pursue what is best for Indian farming, not populist glory. The focus must be on investment — in efficient water management and irrigation, plant breeding and genetics, crop husbandry, market linkages — and in breaking the middleman's hold over the farm-to-consumer value chain, replacing it with farmer-led enterprises, whether cooperatives or producer companies, that allow farmers to capture a share of the value added to their produce along its journey to the dining table/factory.

Now that every village is electrified, agro-processing industry in rural areas is a real possibility, not just climate-controlled storage. Income support linked to area cultivated is a WTO-compatible supplement to farm investment. India needs a functional commodity options and futures market to ensure efficient price discovery, besides a reliable form of crop insurance. Productivity should be raised in every crop, considering the rise in demand for superior foods with rising income levels. Good roads in rural areas, together with a rational approach to trade, would allow conversion of local gluts into supplies to the global markets that enhance farmer incomes.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 03-07-18

पानी के संकट से निपटने के लिए हमें खुद को बदलने की जरूरत

सुनीता नारायण

जब आप यह आलेख पढ़ रहे होंगे, तब तक संभव है कि किल्लत दूर हो जाएगी। पानी की भारी किल्लत के बजाय बाढ़ चिंता का कारण बन जाएगी। लेकिन असल में यह राहत अस्थायी है। अहम बात यह है कि प्रचुरता के इस सीजन में ही हमें पानी की किल्लत के लंबे सीजन की तैयारी करने की जरूरत है, लेकिन हम ऐसा नहीं करते हैं। इस बार गर्मियों में शिमला में पानी की भारी किल्लत पैदा हो गई थी। लेकिन केवल यही एकमात्र ऐसा शहर नहीं है, जिसे इस संकट का सामना करना पड़ा है। नीति आयोग के वर्ष 2018 के कंपोजिट वाटर इंडेक्स के मुताबिक 60 करोड़ लोगों यानी करीब आधी आबादी को गंभीर जल संकट का सामना करना पड़ता है। वहीं उपलब्ध जल में से 70 फीसदी अशुद्ध है। वर्ष 2020 तक दिल्ली, बेंगलूरु, चेन्नई और हैदराबाद में भूजल खत्म हो जाएगा और वर्ष 2030 तक भारत के 40 फीसदी हिस्से में पेयजल उपलब्ध नहीं होगा।

लेकिन हम इस भविष्य को बदल सकते हैं। जल एक ऐसा संसाधन है, जो फिर से भर जाता है। यह हर साल भाप बनकर बादलों में जमता है और फिर बरसता है। सबसे अहम बात यह है कि हम कृषि के अलावा अन्य कामों में पानी का उपभोग नहीं करते हैं। हम उपयोग करते हैं और बहा देते हैं। इसलिए इसे शोधित किया जा सकता है और फिर इसे उपयोग किया जा सकता है। इसका तरीका सीधा सा है। पहले हमें प्रत्येक बूंद का संचय कर उपलब्ध जल बढ़ाना चाहिए। जलवायु के जोखिमों वाले भारत में जब बारिश बहुत अधिक हो लेकिन इसका वितरण असमान हो तो जल को संचय करने और भूजल को रिचार्ज करने के ज्यादा उपाय किए जाने चाहिए।

दूसरा और सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका जल उपलब्धता में वृद्धि के साथ ही इसका बेहतर उपयोग है। प्रत्येक बूंद से ज्यादा फसल और ज्यादा अन्य चीजें होनी चाहिए। इसका मतलब है कि पानी के उपयोग को घटाने का खाका तैयार किया जाना चाहिए। कृषि में इसका मतलब है कि फसल पैदा करने के तरीकों में बदलाव किया जाना चाहिए। हम उन क्षेत्रों में चावल, गेहूं, गन्ने जैसे पानी की अत्यधिक खपत वाली फसलों की बुआई बंद करें, जहां पानी कम है। सरकार को नए सिरे से अपनी नीतियां बनानी होंगी। उसे किसानों को फसलों को बदल-बदल कर बोने के लिए प्रोत्साहित करना होगा। ऐसे खान-पान को बढ़ावा देना होगा, जो कम पानी की खपत वाली फसलों पर आधारित हो।

अगर कृषि के लिए जल का समुचित उपयोग किए जाने की जरूरत है तो शहरों एवं उद्योगों में पानी का फिर से उपयोग जरूरी है। हमारे पास इसके कोई आंकड़े नहीं हैं कि आज देश के शहरों और उद्योगों में कितने पानी का इस्तेमाल होता है। पिछला अनुमान 1990 के दशक के मध्य में जारी किया गया था, जिसमें कहा गया था कि कृषि में उपलब्ध जल का करीब 75 से 80 फीसदी उपयोग होता है। लेकिन अब हालात पूरी तरह बदल गए हैं। शहरों के बढने के साथ पानी की जरूरत भी बढ़ेगी। यह पानी लंबी दूरी से लाया जाएगा, जिससे लागत बढ़ती है और रास्ते में पानी का नुकसान होता है। इसलिए शहरों में उपलब्ध पानी महंगा है और इसकी बाशिंदों को असमान आपूर्ति होती है। जहां लोगों को पानी नहीं मिलता है या मामूली मिलता है, वे भूजल का इस्तेमाल करते हैं। इससे भूजल खत्म हो जाता है।

सबसे चिंताजनक बात यह है कि शहर पर्यावरण में स्वच्छ पानी नहीं छोड़ते हैं। शहरों में इस्तेमाल होने वाला 80 फीसदी पानी अपशिष्ट जल के रूप में छोड़ा जाता है। सवाल यह है कि इसमें से कितने जल को साफ किया जाता है और फिर से इस्तेमाल के लिए उपलब्ध कराया जाता है। हम पानी बहा देते हैं, नल खुला छोड़कर भूल जाते हैं और बरबाद करते हैं।शहरों में उपलब्ध जल दूषित है। नीति आयोग का 2018 का जल सूचकांक बहुत रोचक है। इस सूचकांक में उन नीतियों का जिक्र किया गया है, जिससे भारत में शुद्ध जल की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित होगी। उदाहरण के लिए इसका सुझाव है कि अगर राज्य झीलों और तालाबों जैसे जलाशयों के कायाकल्प पर निवेश कर रहे हैं और जल उपलब्धता की संभावनाएं सुधार रहे हैं तो कृषि में ज्यादा कुशलता लाने और शहरी क्षेत्रों में अपशिष्ट जल को शोधित करने पर निवेश किया जाना चाहिए। इसमें कुछ अच्छे सवाल उठाए गए हैं।

इसने यह पाया है कि हम सही नतीजों को नहीं माप रहे हैं और न ही सही नीति पर अमल कर रहे हैं। उदाहरण के लिए रिपोर्ट में पाया गया है कि राज्य सरकारों के पास बहाल किए गए जलाशयों की संख्या या उससे सिंचित रकबे में बढ़ोतरी के आंकड़े नहीं हैं। केवल ये आंकड़े उपलब्ध हैं कि राज्यों ने जलाशय बनाने या उन्हें बहाल करने में अपने लक्ष्य के मुकाबले कितना काम किया है। लेकिन इस प्रदर्शन में यह नहीं बताया जाता कि क्या बनाए गए जलाशय से भूजल स्तर को सुधारने में मदद मिली है या यह जमीन में महज एक गड्ढा था। यह जलाशयों के संरक्षण या बारिश के पानी को एकत्र करने को अनिवार्य बनाने के कानूनों के सवालों में भी दिखाई देता है। ज्यादातर राज्य कहते हैं कि उन्होंने दोनों काम किए हैं। लेकिन वे इसके परिणामों को लेकर आंकड़े जारी नहीं कर रहे हैं। क्या इससे भूजल भरण में सुधार हुआ है?

रिपोर्ट में पाया गया है कि बहुत से राज्यों के पास पैदा हुए अपशिष्ट जल के 50 से 100 फीसदी हिस्से को शोधित करने की क्षमता है। लेकिन ये आंकड़े असल कहानी को बयां नहीं करते हैं। तथ्य यह है कि राज्य उस अपशिष्ट जल की मात्रा बहुत कम दिखा रहे हैं, जिसे शोधित किया जाना चाहिए। इसके अलावा उनके पास इस चीज के कोई आंकड़े नहीं हैं कि शोधित पानी की गुणवत्ता कैसी है और इसका फिर से उपयोग कहां किया जा रहा है। अच्छी खबर यह है कि हम सही

सवाल पूछ रहे हैं। हम यह जानते हैं कि क्या किया जाना चाहिए, लेकिन हम खुद ऐसा **नहीं** कर सकते हैं। इसलिए त्रासदी न टाले जा सकने वाला सूखा या बाढ़ नहीं है बल्कि हमारी वह काम न करने की नाकामी है, जो किया जाना चाहिए।

जनसत्ता

Date: 02-07-18

हिंसा की जगह

संपादकीय

लगता है, समाज में हिंसा की जगह बढ़ती जा रही है। मामूली बातों पर रंजिश के चलते, अफवाह और शक के आधार पर, किसी उन्माद में या फिर कई बार **क्षणिक** उत्तेजना में लोग बड़े सहज भाव से हिंसा करते देखे जाने लगे हैं। महाराष्ट्र के धुले में बच्चा चोर होने के शक में भीड़ द्वारा पांच लोगों की पीट-पीट कर **हत्या** इसका ताजा उदाहरण है। पिछले कुछ दिनों से बच्चा चोरी के शक में देश के विभिन्न हिस्सों में हिंसा की घटनाएं बढ़ी **हैं।** गुजरात, असम, झारखंड आदि के अलग-अलग हिस्सों में ऐसी कई घटनाएं हो चुकी हैं। ज्यादातर मामलों में देखा गया है कि आदिवासी या पिछड़े इलाकों में ऐसी घटनाएं हुई हैं। इन घटनाओं से स्वाभाविक ही सवाल उठता है कि लोग **आखिर** इस कदर असहनशील कैसे होते गए हैं कि वे सच जानने का **प्रयास** नहीं करते और उकसावे में आकर या अफवाह से आवेशित होकर हिंसक हो उठते हैं। तथ्य यह भी है कि कुछ इलाकों में काफी समय से सोशल मीडिया पर बच्चे चुराने वाले गिरोहों के सक्रिय होने की अफवाह फैलाई जा रही थी। इसके चलते भी लोगों का बाहरी लोगों पर संदेह गहरा होता है और वे उनके खिलाफ हिंसक रुख अख्तियार कर लेते हैं।

बच्चों की चोरी और मानव तस्करी एक बड़ी समस्या है। हर साल इसके आंकड़े कुछ बढ़े हुए ही दर्ज होते हैं, पर तमाम दावों के बावजूद प्रशासन इस पर नकेल कसने में नाकाम रहा है। यह भी तथ्य है कि गरीब और आदिवासी इलाकों से, जहां गरीबी अधिक है, बच्चे चुराना या **फिर** उनके माता-पिता को बरगला कर शहरों में काम दिलाने के नाम पर कम उम्र के बच्चों को ले आना बहुत आसान है। आदिवासी इलाकों की बहुत सारी ऐसी बच्चियां, **जिन्हें** शहरों में काम दिलाने के नाम पर ले जाया जाता है, शोषण का **शिकार** हुई हैं, उनमें से बहुतों के बारे में अब कोई जानकारी नहीं मिल पाती। इस तरह लापता बच्चों की तादाद लगातार बढ़ती गई है। इसलिए समझा जा सकता है कि **गरीब** और आदिवासी इलाकों के लोगों में इससे रोष होगा और वे जब भी अनजान लोगों को अपने इलाके में देखते होंगे, उन पर बच्चा चोर होने का शक गहरा हो जाता होगा।

ऊपर से सोशल मीडिया पर फैलाई जाने वाली अफवाहें आग में घी का काम करती **होंगी।** दूर-दराज के इलाकों में निस्संदेह पुलिस के लिए यह पता लगाना **मुश्किल** काम है कि कहां लोग किस तरह की अफवाह के प्रभाव में हैं और वहां किस तरह की घटनाओं की आशंका है। पर वह अफवाहों पर रोक लगाने या लोगों को सावधान करने का काम तो कर ही सकती है कि वे अमुक अफवाह पर **विश्वास** न करें। बच्चा चोरी के शक में लोगों के **हिंसक** हो उठने की समस्या निस्संदेह चिंताजनक है। पर प्रशासन इसे भीड़ की नासमझी करार देकर अपनी जिम्मेदारी से पल्ला नहीं झाड़ सकता।

बच्चों के चोरी और लापता होने की घटनाओं पर विराम लगाने के लिए उसे त्वरित और व्यावहारिक कदम उठाने ही होंगे। मानव तस्करी और अवैध रूप से घरेलू नौकर के रूप में काम कराने, भीख मंगवाने जैसी प्रवृत्तियां अगर नहीं रुक पा रही हैं, तो इसमें दोष प्रशासन का ही है। जब तक इन प्रवृत्तियों पर कड़ाई से अंकुश नहीं लगाया जाता, बच्चों की चोरी और फिर उससे उपजा लोगों के आक्रोश को शांत कर पाना मुश्किल ही बना रहेगा।

Date: 02-07-18

अपराध और दंड

संपादकीय

हालांकि यौन हिंसा की खबरें आए दिन आती रहती हैं, और तमाम लोग इन पर एक तरह की बेबस चुप्पी के आदी हो गए हैं। पर पिछले हफ्ते मध्यप्रदेश के मंदसौर में जो हुआ उसने राज्य को ही नहीं, पूरे देश को स्तब्ध कर दिया और स्वाभाविक ही इस पर काफी तीखी प्रतिक्रिया हुई। मंदसौर और मध्यप्रदेश के कई और शहरों में भी हजारों लोग आक्रोश का इजहार करने सड़कों पर उतर आए। एक सात साल की बच्ची का सामूहिक बलात्कार समेत दरिंदगी का शिकार होना कई सवाल खड़े करता है, जिनमें कानून-व्यवस्था से लेकर स्कूल प्रशासन की घोर लापरवाही और समाज में बढ़ रही पतनशीलता तक बहुत कुछ शामिल है। मंदसौर में कक्षा दो की छात्रा उस वक्त आरोपियों के चंगुल में पड़ गई जब वह छुट्टी के बाद, स्कूल से बाहर, घर जाने के लिए अपने पिता या मां का इंतजार कर रही थी। उसका कोई अभिभावक वहां पहुंचता, उसके पहले ही एक आरोपी मिठाई का लालच देकर उसेअपने साथ ले गया। अपहरण और सामूहिक बलात्कार के दो आरोपी पकड़ लिये गए हैं, और खबर यह भी है कि गंभीर अवस्था में अस्पताल में भर्ती बच्ची की हालत में सुधार हो रहा है। लेकिन इस स्तब्धकारी घटना के संदर्भ में स्कूल प्रशासन अपनी जिम्मेवारी से पल्ला नहीं झाड़ सकता।

सात साल की बच्ची को अकेले क्यों जाने दिया गया? स्कूल ने यह देखना जरूरी क्यों नहीं समझा कि उसका कोई अभिभावक लेने आया है या नहीं? यही नहीं, घर के लोगों का आरोप है कि स्कूल प्रशासन नहीं चाहता था कि लापता बच्ची की तलाश में वे पुलिस के पास जाएं। स्कूल का ऐसा रवैया इस तरह की कई और घटनाओं में देखा गया है। लेकिन यह वाकया सिर्फ स्कूल में या स्कूल आते-जाते बच्चे-बच्चियों की सुरक्षा का ही नहीं है। यह एक भयावह यौन अपराध है और लिहाजा लड़कियों-महिलाओं की सुरक्षा का सवाल भी उठता है। पिछले दिनों 'थॉमसन रॉयटर्स फाउंडेशन' की रिपोर्ट ने बताया कि स्त्रियों की असुरक्षा के मामले में भारत दुनिया में पहले नंबर पर है, तो यह बहुतों को कुछ बेतुका-सा लगा। इस सर्वे में अफगानिस्तान को दूसरे, सीरिया को तीसरे और सोमालिया को चौथे स्थान पर रखा गया है। रिपोर्ट की प्रामाणिकता जो हो, इस हकीकत से कैसे इनकार किया जा सकता है कि भारत में घरेलू हिंसा से लेकर बलात्कार तक स्त्री-विरोधी अपराध साल-दर-साल बढ़े ही हैं। समाज की संवेदनशीलता का आलम यह है कि सामूहिक बलात्कार की शिकार बच्ची की पहचान सोशल मीडिया में उजागर हो गई।

दिसंबर 2012 में दिल्ली में हुए सामूहिक बलात्कार कांड के खिलाफ उमड़े जन-आक्रोश के बाद यौनहिंसा संबंधी कानूनों को और सख्त बनाया गया। पर इससे जो उम्मीद की गई थी वह पूरी नहीं हुई। उलटे अधिकतर राज्यों में स्त्री-विरोधी अपराधों में इजाफा ही हुआ है। मंदसौर कांड एक ऐसे राज्य में हुआ जिसने बारह साल से कम उम्र की बच्ची के साथ

बलात्कार के मामले में मृत्युदंड का **प्रावधान** कर रखा है। इसलिए हमें अपनी दुख-भरी **प्रतिक्रिया** को कानून की सख्ती यानी दंड के प्रावधानों तक सीमित न रख कर, चाहे बच्चे-बच्चियां हों, या लड़कियां-स्त्रियां या **बुजुर्ग**, सुरक्षा के सवाल को उसके पूरे परिप्रेक्ष्य में देखना होगा। कानून-व्यवस्था हर तरह से बदहाल हो, न्यायिक प्रणाली कछुआ चाल से चलती हो, समाज में भी और राजनीति में भी अपराधीकरण बढ़ रहा हो, तो समाज के किसी एक हिस्से के लिए विशेष कानून और विशेष सुरक्षा प्रबंध भी नाकाफी साबित **होंगे**।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 02-07-18

तकनीकी दिक्कतों में फंस गई फसल बीमा योजना

विजय विद्रोही, कार्यकारी संपादक, एबीपी न्यूज चैनल

किसी भी योजना को शुरू करने से पहले **व्यावहारिक** दिक्कतों का जायजा लेना और उसके **हिसाब** से समाधान व्यवस्था करना उस योजना की सफलता के लिए बेहद जरूरी होता है। बहुत उम्मीदें बंधाने वाली फसल बीमा योजना इसी कसौटी पर नाकाम रही है। किसान यह सोचकर अपनी फसल का बीमा करवाता है कि नुकसान होने पर भरपाई हो सकेगी। वह उम्मीद करता है कि फसल खराब होने की सूरत में उसका आकलन ठीक होगा और नुकसान के हिसाब से उसे भुगतान समय पर हो जाएगा। कुल उपज कितनी होनी चाहिए थी और नुकसान कितना हुआ, इसके लिए क्रॉप कटिंग विधि अपनाई जाती है। इसी से तय होता है **कि** उपज प्रति हेक्टेयर कितनी होगी, क्रॉप कटिंग से ही तय होता है कि प्रति हेक्टेयर कितने का नुकसान हुआ? इसी नुकसान के हिसाब से किसान को मुआवजा मिलता है और यहीं दिक्कत है।

फसल बीमा योजना में ग्राम पंचायत स्तर पर हर सीजन में चार क्रॉप कटिंग होना तय किया गया है। इसी तरह तहसील में 16 और जिले में 24 क्रॉप कटिंग होनी चाहिए। क्रॉप कटिंग के आंकड़े फसल के पकने के तीस दिनों के भीतर बीमा कंपनी तक पहुंच जाने चाहिए। योजना में आगे कहा गया है कि बीमा कंपनी को क्रॉप **कटिंग** के आकंड़े मिलने के 45 दिनों के भीतर किसान को उसकी फसल खराब होने के दावे का भुगतान कर देना है। क्रॉप **कटिंग** के लिए किसी भी ग्राम पंचायत में एक खेत चुन लिया जाता है। फसल पकने पर सौ बाई सौ फीट के हिस्से से उपज की कटाई की जाती है। उसे तौला जाता है। यह कृषि व राजस्व **अधिकारियों** की देख-रेख में होता है। उपज तौलने के बाद हिसाब लगाया जाता है कि प्रति एकड़ किसान को कितना नुकसान हुआ?

फसल बीमा योजना में किसान को इकाई न मानकर गांव को इकाई माना गया है। ऐसे में होता यह है कि किसी किसान की फसल खराब होने पर उसे भुगतान **इसलिए** नहीं मिलता, क्योंकि जिस खेत में **क्रॉप** कटिंग की गई थी, वह ओलावृष्टि या अतिवृष्टि की चपेट में आने से बच गया था। एक ग्राम पंचायत में आमतौर पर 8 से 10 गांव आते हैं। यह सच है कि पूरी ग्राम पंचायत में न तो एक जैसी बरसात होती है और न ही **ओलावृष्टि** या अतिवृष्टि। ओलावृष्टि और अतिवृष्ट एक वेव में होती है, एक **पंक्ति** में। ऐसे में कुछ खेतों में फसल खराब होती है और कुछ में नही होती है। उधर क्रॉप कटिंग ऐसे खेत में कर दी जाती है, जहां फसल खराब नहीं हुई हो या बहुत कम नुकसान हुआ हो, तो उस

किसान को नुकसान होता है जिसकी फसल ज्यादा खराब होती है। विशेषज्ञों का कहना है पंचायत स्तर से इसे गांव स्तर पर लाने की जरूरत है।

क्या पैदावार और नुकसान का जायजा किसी अन्य तरीके से नहीं लिया जा सकता? हरियाणा में सैटेलाइट से रिमोट सेसिंग का इस्तेमाल किया जा रहा है। कुछ राज्य ड्रोन से भी नुकसान का जायजा ले रहे हैं। हरियाणा और पंजाब में व्हीट कैम का प्रयोग किया गया, जो एक एप है। पंजाब और हरियाणा में पिछले साल एक नया प्रयोग किया गया। इंटरनेशनल फूड पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट ने पिक्चर बेस इंश्योरेंस एप पचास गांवों के करीब छह सौ किसानों के स्मार्टफोन पर इंस्टॉल किया। किसानों से कहा गया कि वह गेहूं की बुवाई से लेकर कटाई होने तक हर हफ्ते अपने खेत की तस्वीर एप के जरिए उतारें। खेत की तस्वीर एक ही जगह पर खड़े होकर एक ही कोण से खींचें।

यह तस्वीरे सीधे इंश्योरेंस कंपनी के सर्वर पर अपलोड की गई, जहां इनकी जानकारों ने जांच की और उपज के साथ साथ नुकसान का अंदाजा लगाया। स्मार्टफोन एप से पता चला कि 20 फीसदी से कम नुकसान की सूरत में गेहूं की उपज बीस क्विंटल प्रति एकड़ होगी। क्राप कटिंग ने भी इसे 20.2 किवंटल माना। एप के आंकड़े बीमा कंपनी को भेजे गए, जिसने तीन महीनों के भीतर ही किसानों के बैंक अकाउंट में नुकसान का पैसा जमा करवा दिया। साफ है कि व्हीट कैम जैसे एप आसानी से समझ में आ जाते हैं, किसानों की पूरी योजना के साथ सहभागिता बढ़ती है, वह हर हफ्ते तस्वीर खींचता है और फसल बीमा योजना से जुड़ा महसूस करता है। यह तकनीक किसानों को भी मंजूर है और बीमा कंपनियों को भी।

THE HINDU

Date: 02-07-18

Risky Recourse

LIC's proposal to acquire a majority stake in IDBI Bank raises regulatory concerns

EDITORIAL

The Insurance Regulatory and Development Authority of India has approved a proposal to allow the Life Insurance Corporation of India to increase its stake in the ailing state-owned IDBI Bank to 51%. The plan envisages the insurer injecting much- needed capital into the financially stressed lender, which was placed under the Reserve Bank of India's prompt corrective action framework in May 2017 as a consequence of its non-performing assets rising beyond a threshold. While there are no details on how exactly this capital infusion will take place — reports suggesting that the LIC may acquire the additional 40% stake it would need to reach 51% shareholding from the Government of India — market speculation and media reports have estimated figures north of ₹10,000 crore. While for the LIC the sum is a small fraction of the ₹1.24 lakh crore it received in just first-year premiums in the year ended March 31, 2017, for IDBI Bank the funds would almost equal the ₹12,865 crore in capital infusion it got from the government in the last fiscal. Whether this will be adequate to even staunch the flow of red ink at the troubled bank, leave alone help it turn around, is another matter. The bank posted a net loss of ₹8,238

crore in the 12 months ended March 31, 2018, and is facing the prospect of more losses with gross non-performing assets rising to 28%.

The proposal raises several troubling questions. The government clearly sees it as a relatively painless way to recapitalise the bleeding bank without adversely impacting its fiscal position, but the risks in increasingly banking on state-controlled cash-rich corporations to help bail out other state-owned companies or lenders are too significant to be glossed over. Then, there are the regulators. The IRDA, whose mission is to "protect the interest of and secure fair treatment to policyholders", is reported to have exempted the LIC from the well-reasoned 15% cap on the extent of equity holding an insurer can have in a single company. This puts at risk the interests of the premium-paying customers of the LIC. The Securities and Exchange Board of India has in the past waived the mandatory open offer requirement under its takeover regulations when it involved a state-run acquirer and another state enterprise as the target. As the capital markets watchdog, SEBI has an obligation in all such cases to weigh the interests of the small investor. And the RBI, as the banking regulator, should not ignore the contagion risks that the level of "interconnectedness" the proposed transaction would expose the entire financial system to.